एकीकृत शिक्षा दर्शन पर आधारित भारतीय शिक्षा प्रणाली एक दृष्टिकोण

राजीव दुबे*
अमित कुमार**

शिक्षा हमें वे सभी गुण सिखाती है जो श्रेष्ठ तथा उत्तम समझे जाते हैं। परंतु आधुनिक समय में शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य एवं रूपरेखा में सामान्य परिवर्तन देखने को मिल रहा है। इस परिवर्तन से शिक्षा एक साध्य न होकर एक साधन की ओर प्रवृत्त हो गई है। वस्तुतः शिक्षा आज ज्ञान की प्राप्ति एवं आत्मसंतुष्टि के लक्ष्य से हटकर एक विषय क्षेत्र में ज़रूरी उपाधि तथा नौकरी प्राप्त करने तक सीमित हो गई है। हालाँकि, शिक्षा के माध्यम से कौशल, उपाधि तथा नौकरी प्राप्त करना अपने आप में निराशाजनक परिस्थिति की ओर संकेत नहीं करता, परंतु जब इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के बावजूद कोई व्यक्ति स्वयं से तथा समाज से अलग, असंतुष्ट एवं विक्षिप्त रहता है, तब हमें वर्तमान समय में शिक्षा की अपूर्णता एवं उसके द्वारा समाजीकरण की प्रकिया को पूरा न कर पाने की असफलता पर चर्चा करना अनिवार्य प्रतीत होता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण लेते हुए इसके सुधार हेतु एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की संभावना को विकसित करने का प्रयास है, जो कि 'एकीकृत शिक्षा दर्शन' पर आधारित हो, जिसमें स्वतंत्र विचार, रचनात्मकता, मानवतावादी सोच, शिक्षक और विद्यार्थी के बीच परस्परता को प्रोत्साहित किया जाता है।

शिक्षा अपने संपूर्ण स्वरूप में ज्ञान के प्रकाश की ओर एक सतत यात्रा है। दुर्भाग्यवश लंबे समय से भारत में शिक्षा के ऊपर हो रहे संवाद में क्षैतिज प्रसार एवं संख्या के ऊपर ज़्यादा ध्यान केंद्रित रहा है। शिक्षा में निहित आदर्शवादी दर्शन एवं इसके एकात्मवादी स्वरूप को रेखांकित करने वाले पहलुओं को चिह्नित एवं विकसित करने तथा इससे जुड़ी चुनौतियों पर सामान्यतः चर्चा नहीं की जाती है। अतः आज के संदर्भ में इस प्रश्न का खड़ा होना स्वाभाविक है कि भारत में व्याप्त आधुनिक शिक्षा में कहाँ कमी रह गई है तथा इसके क्या विकल्प हो सकते हैं? एक शिक्षक के रूप में अगर इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की जाए तो हमें एक ऐसी दुविधापूर्ण परिस्थिति से प्रारंभ करना पड़ता है, जहाँ आशा भी है और निराशा भी, संभावनाएँ भी हैं और बहुत-सी चुनौतियाँ भी। आशा एवं संभावनाओं के स्रोत गांधी, टैगोर, अरविंद एवं

**सहायक प्राध्यापक*, समाजशास्त्र विभाग, त्रिपुरा केंद्रीय विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, त्रिपुरा 799022
***सहायक प्राध्यापक*, पश्चिम एशियाई अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली 110067

© NCERT not to be republished

कृष्णमूर्ति जैसे महापुरुषों की चिंतन परंपरा है। दूसरी तरफ़ निराशा एवं चुनौतियों की भयावहता वर्तमान शिक्षा व्यवस्था स्वतः ही बयान करती है। सर्वप्रथम, यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय महापुरुषों ने शिक्षा से संबंधित जो भी विचार दिए हैं उनकी पूर्ण रूप से अनदेखी की गई है, परंतु दुर्भाग्यवश उन्हें कभी भी मुख्य शिक्षा प्रणाली में शामिल न करके हमेशा ही एक वैकल्पिक शिक्षा का दर्जा ही प्रदान किया गया है। रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के दर्शन पर आधारित रामकृष्ण मिशन विद्यालय, श्री अरविंद के दर्शन पर आधारित मिरांबिका विद्यालय, जिदु कृष्णमूर्ति के दर्शन पर आधारित ऋषि वैली स्कूल एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन पर आधारित सनातन धर्म विद्यालय इत्यादि कुछ इस तरह के उदाहरण हैं। इस तरह की संस्थाएँ सामान्य रूप से भारतीय शैक्षिक दर्शन में उस परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास करती हैं, जिसमें स्वतंत्र विचार, रचनात्मकता, मानवतावाद तथा शिक्षक और विद्यार्थी के बीच परस्परता को प्रोत्साहित किया जाता है।

यह शोध पत्र मुख्यतः तीन खंडों में विभाजित है। खंड एक में, वर्तमान शिक्षा प्रणाली की प्रमुख कमियों को पहचानने की कोशिश की गई है। इस क्रम में दार्शनिक स्तर पर जो कमियाँ हैं, उन्हें ही उजागर करने की कोशिश की गई है। दार्शनिक स्तर पर भारतीय शिक्षा के संदर्भ में बनाई गई गलत परिकल्पनाओं को पहचानने के उपरांत खंड दो में, भारतीय ज्ञान मीमांसा की परंपरा में निहित संभावनाओं को तलाशने का प्रयास किया गया है। अंततः खंड तीन में उन संभावित चुनौतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो शिक्षा प्रणाली में भारतीय सोच को लागू करने के दौरान उत्पन्न हो सकती हैं।

खंड एक— भारतीय शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ

इस खंड में स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में शिक्षा के विकास पथ को समझने तथा उसके मार्ग में आए विचारधारात्मक कठिनाइयों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वविदित है कि शिक्षा प्रत्येक समाज की आवश्यकता एवं अभिलाषा को प्रतिरूपित करती है तथा वह उस समाज की सांस्कृतिक परंपराओं से प्रेरणा भी ग्रहण करती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा प्रणाली के विकास के संदर्भ में, एक स्वाभाविक अपेक्षा यह थी कि इसे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं परंपराओं के अनुरूप ही विकसित किया जाना चाहिए ताकि इससे देश की सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा एवं उन्नति हो सके तथा साथ ही साथ शिक्षा की सार्थकता भी बनी रहे। परंतु इस काल में जिस तरह की शिक्षा प्रणाली को अपनाया गया, वह मुख्यतः यूरो-केंद्रित विचार द्वारा निर्देशित थी। इस संदर्भ में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यूरोपीय शिक्षा प्रणाली आधुनिक समाज के निर्माण की एक आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिकता तथा धर्मनिरपेक्षता के प्रभाव में आकर आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली तथा प्राचीन धार्मिक शिक्षा पद्धति के बीच अतर्कपूर्ण विभाजन रेखा खींच दी गई। एक के विकास को दूसरे के विरोध के रूप में प्रस्तुत किया गया तथा भारतीय

© NCERT not to be republished

शिक्षा परंपरा एवं धरोहर की उन्नति तो दूर, उसके संरक्षण के प्रयास की भी अवहेलना की गई। इसी संदर्भ में, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी द्वारा आधुनिकता पर की गई आलोचना के प्रति अपनी खुली असहमति जताई तथा कहा कि गांधीजी के द्वारा *हिंद स्वराज* में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं वह आधुनिक सोच एवं परिस्थितियों से पूर्णतया असंगत हैं (नेहरू, 1984, पृष्ठ 510)। गांधीजी के अलावा स्वदेशी शिक्षा के विकास में आवश्यकता पर अन्य महापुरुषों जैसे कि, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा श्री अरविंद ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, किंतु स्वतंत्रता पश्चात् भी शिक्षा व्यवस्था मुख्यतः उपनिवेशवादी मानसिकता पर ही आधारित होकर पृथकतावादी तथा किताबी प्रवृत्ति की तरफ़ उन्मुख होती चली गई (आचार्य, 1997, पृष्ठ 601)। वस्तुतः हमें स्वदेशी शिक्षा के विचार को महज सांकेतिक महत्व न प्रदान कर उसे वास्तव में लागू करना चाहिए था। ऐसा न कर पाने के कारण तथा उपनिवेशीय शिक्षा प्रणाली के लागू होने के कारण, शिक्षा के क्षेत्र में गत वर्षों में निम्न समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं—

पश्चिमी सोच द्वारा भारतीय समस्याओं के समाधान की असफल चेष्टा

पश्चिम से प्रभावित हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली वस्तुतः आधुनिकीकरण पर आधारित है। यह आधुनिकीकरण की संकल्पना जिन आधारों पर टिकी है, उनमें एक है प्रत्यक्षवाद की अवधारणा। प्रत्यक्षवाद की एक विशेषता यह है कि यह ज्ञान को ज्ञाता से, मूल्यों को तथ्यों से तथा वस्तुनिष्ठता को व्यक्तिपरकता से अलग रखने की सोच का समर्थन करती है। यहाँ वस्तुनिष्ठ होना, मूल्य-निरपेक्ष होना, सामाजिक होना तथा पृथक होना एक गुण एवं 'सच्चे ज्ञान' प्राप्ति की आवश्यक शर्त मानी गई है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यहाँ औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को इस सीमा तक बढ़ाया जाता है कि हम धर्म तथा विज्ञान को एक-दूसरे का विरोधी मानने लगते हैं एवं इन्हें अलग-अलग विश्लेषित करने के पक्ष में तर्क देते हैं।

शिक्षा पद्धति में प्रत्यक्षवादी सोच के प्रस्तावक यह तर्क देते हैं कि धर्म तथा आध्यात्मिकता जैसे विषयों के ऊपर चर्चा किसी अन्य क्षेत्र अथवा संस्थागत ढाँचे के अंतर्गत होनी चाहिए न कि शिक्षण संस्थानों के भीतर। उनके अनुसार, शिक्षा के क्षेत्र में धर्म तथा आध्यात्मिकता जैसे विषयों को शामिल करना न तो वांछनीय होगा और न ही संभव। यह इस कारणवश वांछनीय नहीं होगा, क्योंकि धर्म तथा आध्यात्म पारंपरिक अवैज्ञानिकता पर आधारित हैं तथा यदि हम इसे शिक्षा प्रणाली में शामिल कर लेते हैं, तो इससे इसके धर्मनिरपेक्ष होने की विशेषता समाप्त हो जाती है। परंतु अगर देखा जाए तो आध्यात्मिकता धर्मनिरपेक्षता के बीच पश्चिम के द्वारा किया गया यांत्रिक विभाजन यूरो-केंद्रित सोच का परिणाम है। यह इसलिए क्योंकि यदि हम भारतीय परंपरा एवं इसके पुनर्जागरण के इतिहास को देखते हैं तो हमें ऐसे अनेक महापुरुषों के विचार देखने को मिलते हैं जो आध्यात्मिकता से तो ओत-प्रोत हैं ही, साथ ही उनकी धर्मनिरपेक्षता भी बिलकुल स्पष्ट है। प्रश्न यह है कि हम इन परंपराओं को अपनी भावी सोच का

© NCERT not to be republished

आधार क्यों नहीं बनाते जो कि आध्यात्मिकता एवं धर्मनिरपेक्षता के बीच एक व्यापक सोच का आधार रखती है?

औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने ऐसी नीतियों को अपनाया जिससे भारतीयों के मन में उन सभी चीज़ों के लिए सम्मान की भावना उत्पन्न हुई जो पश्चिम से जुड़ी हुई थीं। किंतु जिस तरह हम समाज में हुए परिवर्तन को नकार नहीं सकते, उसी तरह अपने अतीत एवं परंपरा की भी उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः किसी भी विषय के ऊपर कोई योजना और खासकर शिक्षा के क्षेत्र में आगे विकास का आयोजन हमें पाश्चात्य के स्थान पर भारतीय परंपरा एवं संस्कृति को ध्यान में रखकर ही करना होगा।

श्री अरविंद ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या हमें आधुनिक विज्ञान पद्धति तथा सिद्धांतों को सिर्फ़ इसलिए नकार देना चाहिए, क्योंकि वे यूरोप से आए हुए हैं और परंपरागत भारतीय ज्ञान तक ही अपने आपको सीमित कर लेना चाहिए? दूसरे शब्दों में, क्या हमें पाठ्यपुस्तकों से गैलीलियो तथा न्यूटन आदि को बाहर कर सिर्फ़ भास्कराचार्य, आर्यभट्ट तथा वराहमिहिर को ही शामिल करना चाहिए? (श्री अरविंद आश्रम ट्रस्ट, 1956, पृष्ठ 08)। श्री अरविंद का यह विश्वास है कि शिक्षा कहीं से भी अतीत की ओर लौटना मात्र नहीं है। उनका मत था कि सत्य, ज्ञान तथा शिक्षा आपस में एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं तथा ये सभी किसी एक देश एवं सीमा से परे हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आस-पास के वातावरण में मौजूद सूचनाओं को जोड़ना तथा उससे जो कौशल ज्ञान की प्राप्ति होती है उसके माध्यम से जनमानस के मन एवं चेतना में शक्ति का संचार करना है। श्री अरविंद के अनुसार, यह तभी संभव है जब हम ज्ञानार्जन की संभावनाओं के प्रति खुला रुख अपनाएँ तथा चाहे वह किसी भी दिशा से आए हम उसका सहर्ष स्वागत करें। परंतु इस खुलेपन का तात्पर्य यह नहीं है कि हम इसके प्रति सावधान न रहें। इस संदर्भ में हमें गांधीजी के विचारों को याद रखना होगा कि हमें नए विचारों के लिए अपने घरों के दरवाज़े एवं खिड़कियाँ तो खुली रखनी चाहिए मगर यह कदापि स्वीकार नहीं करना चाहिए कि नये विचारों की आँधी में हमारे पाँव ही ज़मीन से उखड़ जाएँ (आचार्य, 1997, पृष्ठ 602)।

अतः कहा जा सकता है कि वस्तुनिष्ठता, अनुभाविकता तथा सत्यनिष्ठा पर आधारित पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था आज के समय की आवश्यकता है। किंतु हमें पश्चिमी शिक्षा प्रणाली की महत्ता के साथ-साथ प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की संपूर्णता को भी स्वीकारना होगा, जो न सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों के अवतरण के महत्व को, बल्कि साथ ही साथ उनके अनुभावीकरण को भी आवश्यक मानते हैं। पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था के समानांतर भारतीय चिंतन परंपरा को विकसित करने के महत्व को मुखर्जी, आर. के. (1969) स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐसा करने के उपरांत ही हम शिक्षा को समाज एवं मनुष्य का एक अभिन्न अंग बना सकते हैं एवं शिक्षा में जो एकाकीपन एवं विसंगति है उसे खत्म कर सकते हैं। इसके अभाव में हमारी स्थिति उस पशु के समान होगी जो चंदन का बोझ तो उठाए हुए है, परंतु उसकी खुशबू का आनंद ले सकने की स्थिति में नहीं है।

© NCERT not to be republished

विखंडित ज्ञान— शरीर, मन तथा आत्मा के बीच सहक्रिया का अभाव

आधुनिक शिक्षा प्रणाली का आधार देकार्ते का प्रत्यक्षवादी सिद्धांत है। जिसमें मन तथा शरीर के बीच द्वैतता की स्थिति को स्वीकार किया गया है। पश्चिम जगत ने ज्ञान प्राप्ति के अपने प्रयास में सदा ही शरीर, मन, प्रज्ञा तथा आत्मा को अलग-अलग तथा एक-दूसरे से असंबंधित माना है (उपाध्याय, 1968, पृष्ठ 30)। द्वैतवाद की पश्चिमी संकल्पना भारतीय ज्ञान परंपरा के समक्ष चीज़ों को उसकी एकरूपता एवं अखंडता में समझने की प्रक्रिया के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती है। यह चुनौती सामाजिक स्तर पर तब और भी स्पष्ट होती है जब हम समाज में ऐसे व्यक्तियों की बहुसंख्या देखते हैं जिनके मनसा, वाचा एवं कर्मणा में कोई तालमेल नहीं होता है अर्थात् वे सोचते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं एवं बोलते कुछ और हैं।

अधिकतर मामलों में आज एक विद्यार्थी किसी भी विषय के अध्ययन का चयन इस आधार पर नहीं करता कि उसे उस विषय को पढ़ने में रुचि है या वह उस विषय से संबंधित ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है। वास्तव में, वह उस विषय को इसलिए पढ़ता है, क्योंकि उसकी नज़र में वह उस विषय से अच्छे नंबर, आसान डिग्री तथा अंततः एक नौकरी प्राप्त कर सकेगा। इस कारण आज हमें एक ऐसी विरोधाभासी स्थिति देखने को मिलती है जिसमें जहाँ एक ओर शिक्षण संस्थानों एवं डिग्रियों की भरमार है, वहीं दूसरी ओर सामान्य ज्ञान अथवा अवबोधन का अभाव। भारतीय समाज में शिक्षा के क्षेत्र में आई इस तरह की प्रवृत्ति के कारण पिछले कुछ दशकों में हम अनेक ऐसे निजी शिक्षण संस्थानों को उभरते हुए देख सकते हैं, जो प्रबंधकीय तथा अभियांत्रिकी आदि क्षेत्र में मुख्यतः डिग्री प्रदान करने का कार्य करने में संलग्न हैं। उपरोक्त कथन को अगर हम और स्पष्ट करना चाहें तो हाल ही के दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। द *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (6 सितंबर, 2015) के एक अंक में दिया गया था कि उत्तर प्रदेश में 368 सरकारी चपरासी के पद के लिए 23 लाख आवेदन प्राप्त हुए जिसमें अनेक आवेदनकर्ता पीएच.डी. की उपाधि धारक भी थे, वस्तुतः यह तथ्य एक झकझोर देने वाली स्थिति की तरफ़ इशारा करता है। इसी तरह बिहार में कक्षा बारह के परिणाम घोषित होने के बाद प्रथम स्थान प्राप्त होने वाले विद्यार्थी से संबंधित विवाद के मीडिया में आने से जिस परिस्थिति का आभास होता है, वह इस बात की ओर इशारा करती है कि आज अंक प्राप्त करना, डिग्री हासिल करना एवं अंततः कोई नौकरी हासिल करना शिक्षा प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य बन गया है। इस बात को समझने की जगह कि शिक्षा प्राप्ति के क्रम में अंक लाना एवं डिग्री हासिल करना एक पड़ाव मात्र है, लेकिन आज यही शिक्षा का उद्देश्य बन गई है तथा मंज़िल को प्राप्त करने के लिए लोग किसी भी रास्ते को अपनाने से हिचकिचाते नहीं हैं।

यदि हम आज के समय में अपने विद्यालयों की स्थिति की ओर देखें तो यह स्पष्ट है कि यद्यपि विद्यालयों की संख्या के मामले में हमारी स्थिति पहले से बेहतर हुई है, परंतु जहाँ तक विद्यालयों में प्रचलित शैक्षिक संस्कृति का सवाल है, वह निष्प्राण

© NCERT not to be republished

पाठ्यक्रम, बंद तथा अत्यधिक अनुशासित कक्षाएँ, हतोत्साहित शिक्षक, परीक्षा केंद्रित पढ़ाई तथा किसी भी विषय को रटने न कि समझने जैसी अनेक विकृतियों से ग्रस्त दिखाई देती है। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थिति भी लगभग इसी प्रकार की है। हम यहाँ भी संख्या के दृष्टिकोण से तो काफ़ी आगे बढ़ गए हैं; परंतु जहाँ तक अकादमिक संस्कृति का प्रश्न है, स्थिति चिंतापूर्ण ही है। विश्वविद्यालयों में बढ़ती हुई हिंसा की घटनाएँ, शोध का गिरता हुआ स्तर, कक्षाओं से शिक्षकों की अनुपस्थिति आदि अनेक समस्याएँ आज हमारे कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में देखने को मिलती हैं। वस्तुतः आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही मनुष्य को मानव न बनाकर एक पेशेवर व्यवसायी बनाने का हो गया है। पेशेवर व्यवसायी होना कोई गलत बात नहीं है; परंतु यदि हम मानव हुए बिना सिर्फ़ पेशेवर बनते हैं तथा शिक्षा को मात्र बाज़ार के अनुकूल मानव संसाधन प्रदान करने का ज़रिया बना देते हैं; तो निश्चित ही यह विचारणीय है।

वस्तुतः शिक्षा मात्र एक उपयोगितावादी आयाम नहीं है जिसमें शिक्षा को हुनर अथवा दक्षता प्राप्त कर, नौकरी हासिल कर, पैसा कमाने मात्र का एक साधन मान लिया जाए। दरअसल, शिक्षा एक तपस्या है जिसमें तप कर एक व्यक्ति अपने स्वार्थी एवं अहंवादी प्रवृत्ति से मुक्त होकर दैवीय अनुभूति को प्राप्त करता है। शिक्षा के इस सच्चे स्वरूप एवं दर्शन को पुनःस्थापित करने के लिए उन विचारों को जाग्रत करना आवश्यक है जो एक समेकित ज्ञान परंपरा की वकालत करते थे। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम अध्ययन-अध्यापन की एक ऐसी संस्कृति को विकसित करें, जहाँ खुले वातावरण में विभिन्न शिक्षण संस्थानों द्वारा व्यक्ति के मन, शरीर तथा आत्मा को एकीकृत करने का कार्य किया जाए। आज हमें एक ऐसी एकीकृत शिक्षा व्यवस्था को विकसित करना होगा जहाँ व्यक्ति तथा समाज, शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग न समझा जाए। यदि आज हमें इस संसार को भय एवं दुःख के प्रभाव से बचाना है तो नैतिक मूल्यों को किताबों तक सीमित न रखकर उसे व्यक्ति के जीवन के साथ जोड़ना होगा।

अध्यापन का व्यावसायीकरण

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत अध्यापन के कार्य में रत शिक्षकों की स्थिति भी विचार करने योग्य है। आज अध्यापन के कार्य को किसी अन्य व्यवसाय की तरह ही समझा जाता है, जहाँ लोगों का मुख्य उद्देश्य मूल रूप से पैसा अथवा लाभ कमाना होता है। तदनुसार शिक्षकों को भी जीवन क्षेत्र तथा समाज में आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करने वाला न मानकर एक विषय विशेषज्ञ मात्र के रूप में ही देखा जाता है, जो अन्य पेशेवर लोगों की तरह सुबह दस बजे से सायं पाँच बजे तक किसी कार्यालय में कार्यरत रहता है। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में मात्रात्मक तथा यांत्रिक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक गिरावट का स्पष्ट चित्रण हमें अनेक ऐसी घटनाओं में भी परिलक्षित होता है, जहाँ शिक्षक जातिगत आधारित भेदभाव, यौन-शोषण इत्यादि मामलों में लिप्त पाए जाते हैं।

इस तरह की प्रवृत्ति के विपरीत भारत में पठन-पाठन की एक अत्यंत ही समृद्ध परंपरा रही है,

© NCERT not to be republished

जहाँ गुरु को एक ऐसी सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त थी, जिसमें उसे एक आदर्श एवं आशा के प्रतिरूप के तौर पर देखा जाता था। दुर्भाग्यवश हमारी गलत शिक्षा नीति के कारण वह व्यक्ति विशेष जो एक समय में राष्ट्र एवं उसकी भावी पीढ़ी का भाग्य निर्माता समझा जाता था, आज सिर्फ़ एक अन्य पेशेवर की तरह ही देखा जाता है, जहाँ इस क्षेत्र में लोग कभी स्वेच्छापूर्वक तथा व्यक्तिगत इच्छा से आते थे, अब विज्ञापन तथा प्रतियोगिताओं के माध्यम से चुने जाते हैं। वास्तव में, शिक्षा की 'मुक्तिवादी' परंपरा (फ्रेरे, 1972) की अवहेलना कर आज हमने यूरोप के उस पथ को चुना है, जहाँ इस क्षेत्र को भी समझौते के आधार पर स्थापित करते हैं। यहाँ विद्यार्थी एवं शिक्षक के बीच एक बाज़ार आधारित संबंध होता है एवं शिक्षक एक शैक्षिक संस्थान से सिर्फ़ रोज़गार के आधार पर जुड़ा होता है।

आदर्श अथवा विचार के स्तर पर वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में मौजूद कुछ कमियों एवं विसंगतियों को स्पष्ट करने के उपरांत आगामी खंड में इन्हें दूर करने के संबंध में भारतीय परंपराओं से क्या ग्रहण किया जाए, इस संदर्भ में विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

खंड दो— निराशा के मध्य एकीकृत शिक्षा दर्शन में निहित आशा

खंड एक में वर्णित समस्याओं एवं चुनौतियों के मध्य आशा की एक किरण शिक्षा के क्षेत्र में एकीकृत शिक्षा दर्शन को लागू करने से दिखाई देती है। मोटे तौर पर एकीकृत शिक्षा दर्शन शिक्षा प्रणाली में अदूरदर्शी नीतियों, यूरो-केंद्रित झुकावों एवं व्यावसायिक दृष्टिकोण के विपरीत धर्म एवं साधना जैसे ठोस एवं विश्वसनीय भारतीय दर्शन से जुड़ी अवधारणाओं को लागू करने का समर्थन करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो एकात्म मानववाद न सिर्फ़ भारतीय सांस्कृतिक संवेदनशीलता के अनुरूप है, बल्कि यह यहाँ के परिप्रेक्ष्य में सार्थक एवं संदर्भगत शिक्षाशास्त्र को विकसित करने की भी क्षमता रखता है। यह भारतीय समाज में पाए जाने वाले द्वंद्व एवं विरोधाभास का भी समाधान करता है।

ज्ञान मीमांसा के स्वदेशी आधारों पर पठन-पाठन

एकीकृत शिक्षा दर्शन के अनुसार अनेक समस्याओं का समाधान संभव है। यदि हम शिक्षा तथा समाज के विकास के क्षेत्र में अपनी स्वयं की उत्कृष्ट संस्कृति एवं दर्शन को लागू करें तो इन समस्याओं का समाधान सरल है। वास्तव में, स्वतंत्र देश किसी दूसरे देश द्वारा बनाई गई अवधारणाओं पर खड़ा नहीं हो सकता। आधुनिक समय में, भारतीय दर्शन पर आधारित ज्ञान के अभाव तथा पश्चिमीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण भारत के शिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों एवं वहाँ काम कर रहे अध्यापकों की स्थिति चिंताजनक है। इस जटिल माहौल से निजात पाने का एकमात्र उपाय यही होगा कि हम शिक्षा में स्वदेशीकरण को अपनाएँ। 'स्वतंत्रता के बाद भी पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियाँ भारत में अपने प्रभाव को बनाए हुए हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि आज भारत में जो कुछ भी स्वदेशी है, उसे पश्चिम की तुलना में हेय समझा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में इस पश्चिमी प्रभाव ने भारत की मूल सोच एवं दर्शन के विकास को ही बाधित कर

© NCERT not to be republished

रखा है (सुंदरम, 2005)। इस परिस्थिति में एकीकृत शिक्षा दर्शन एक आशा की किरण के रूप में सामने आता है, जिसमें शिक्षा, संस्कृति एवं समाज को एक साथ समझने की कोशिश की गई है। अगर गौर से देखा जाए तो एकीकृत शिक्षा दर्शन को भारतीय विचार के मूल के रूप में समझ सकते हैं। इस दर्शन को न सिर्फ़ वेदों एवं उपनिषदों में स्पष्ट किया गया है, बल्कि यह संसार की रचना एवं उसके गतिमान होने के सत्य को भी व्याख्यायित करता है।

शिक्षा को यदि उसकी संपूर्णता में समझा जाए तो हम उस स्थिति से परे होंगे, जहाँ हमारी मानसिकता शिक्षा एवं शिक्षक, तर्क एवं भावना, औपचारिक एवं अनौपचारिक, आदर्श एवं सत्य तथा सीखने एवं व्यवहार में लाने के बीच में विभेद करती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इस तरह की परिस्थिति में मनुष्य का स्वयं का जीवन भी एक पुस्तक जैसा हो जाएगा जिससे वह बहुत कुछ सीख सकेगा एवं अपने व्यवहार में ला सकेगा। शिक्षा तब एक कक्षा की चहारदीवारी अथवा पुस्तक के कुछ पन्नों तक सीमित न होकर, मनुष्य के दैनिक जीवन के व्यवहारों में परिलक्षित होने लगेगी।

वस्तुतः ज्ञान के आचरण में प्रतिबिंबित होने की संकल्पना भारतीय दर्शन की सभी संकल्पनाओं में है, फिर चाहे वह शिक्षा हो या धर्म। यहाँ विचारों को तभी पूर्ण माना जाता है जब उसे वास्तविकता में लागू किया जाए अथवा अपनाया जाए। तत्पश्चात् शिक्षा का आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होना अथवा धर्म और आध्यात्मिकता का शिक्षा के केंद्र में होना अत्यंत स्वाभाविक है। यह एक दुर्भाग्य ही है कि इस तरह के एकीकृत दर्शन के मौजूद होने के बावजूद सिर्फ़ पश्चिम का आँख बंद करके अनुसरण करने के कारण हमने आधुनिक शिक्षा में आध्यात्मिकता को स्थान नहीं दिया और अब जब हम उसके भयानक परिणामों को अनुभव कर पा रहे हैं, तब अलग से एक नैतिक शिक्षा नामक विषय को विद्यालय में पढ़ाए जाने की बात कर रहे हैं। इस स्थिति में हमें निश्चित ही अपने एकात्मकता के दर्शन को पुनः स्थापित करना होगा।

शिक्षा का पूर्णतावादी दृष्टिकोण

शिक्षा का अर्थ एवं कार्य अत्यंत ही गंभीर है। अपने औपचारिक तथा बाह्य लक्ष्यों जैसे कि, उपाधि, दक्षता, नौकरी एवं जीवकोपार्जन के साधन को प्राप्त करते हुए शिक्षा को एक व्यक्ति के अंदर आत्म-चिंतन तथा स्वयं को अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओं से जोड़ पाने की क्षमता को भी विकसित करना होता है। शिक्षा अपने इस समग्रग्राही अर्थ में व्यक्तियों को उपाधि, पद एवं पैसा जैसी सांसारिक चीज़ों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है ताकि ऐसा कर वे अन्य व्यक्तियों एवं समाज का भला कर सकें। यहाँ भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नहीं होता है, बल्कि ज्ञानोपार्जन अपने आप में एक सार्थक एवं सुखदायी प्रक्रिया होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यहाँ व्यक्ति के मनसा, वाचा तथा कर्मणा में कोई विरोधाभास नहीं होता है। व्यक्ति सभी में स्वयं को और स्वयं में सबको देख पाने की कला सीखने के उपरांत अपने मन, शरीर एवं आत्मा को एकीकृत हुआ महसूस करता है।

© NCERT not to be republished

एक समग्रग्राही शिक्षा का विचार निश्चित ही एकीकृत शिक्षा दर्शन का केंद्र कहा जा सकता है। मानव की रचना शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा से मिलकर हुई है, परंतु वास्तव में ये चारों आपस में एकीकृत हैं तथा इन्हें अलग-अलग नहीं देखा जाना चाहिए। पश्चिम में जो भ्रांति एवं विरोधाभास है, वह इसी बात से उपजा है कि उन्होंने व्यक्ति के इन चार तत्वों को अलग-अलग एवं एक-दूसरे से असंबंधित माना है (उपाध्याय, 1968, पृष्ठ 30)। इसी तरह गांधीजी ने भी एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की बात की थी, जिसमें विद्यार्थियों का संपूर्ण विकास संभव हो सके तथा ऐसा होने के लिए उन्होंने जिस तरह की व्यवस्था की वकालत की थी उसे उन्होंने 'एकीकृत शिक्षा' कहा था। उनके मतानुसार व्यक्ति के मन तथा शरीर का विकास साथ-साथ होता है एवं इसी क्रम में आगे चलकर आत्मा का विकास भी संभव हो पाता है। यदि हम एक को छोड़ दें तो दूसरे की उन्नति कदापि संभव नहीं हो पाएगी (गांधी, 1953, पृष्ठ 48)। गांधीजी के शब्दों में, 'मनुष्य न तो शरीर है न सिर्फ़ बुद्धि, न ही उसमें सिर्फ़ आत्मा का निवास है और न ही हृदय मात्र। एक संपूर्ण मानव वही है जिसमें इन तीनों— मन, शरीर तथा आत्मा के विकास का संतुलन हो।'

गांधीजी के अनुसार, शिक्षा व्यक्ति को भयमुक्त एवं एक सार्थक अस्तित्व प्रदान करती है। यह हमें हमारे अंदर निवास करने वाले उस भय से मुक्त कराती है जो हमारे अनेक गलत कार्यों को न्यायोचित ठहराने का आधार बनती है। हम जीवन भर अपने आपको बाह्य साधनों के माध्यम से सुरक्षित करने या यूँ कहें कि भयमुक्त रखने का प्रयास करते हैं। लेकिन गांधीजी के अनुसार, यदि व्यक्ति को वास्तव में भयमुक्त होना है तो उसे अंदर से मज़बूत होना पड़ेगा। यह आतंरिक शक्ति गांधीजी के अनुसार तभी विकसित हो पाएगी जब व्यक्ति अपने शरीर, मन तथा आत्मा पर नियंत्रण विकसित कर लेगा। चावला (2016) ने शिक्षा पर गांधीजी के दर्शन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उनके अनुसार मनुष्य की शक्ति वस्तुतः उसके स्वावलंबन, स्व-जागरूकता तथा स्व-नियंत्रण की क्षमता पर निर्भर करती है। जब मनुष्य अपने जीवन में इन तीनों तत्वों को अपना लेता है तब उसे सत्य एवं अहिंसा की शक्ति प्राप्त होती है एवं वह आंतरिक रूप से भयमुक्त जीवनयापन कर पाता है। अतः गांधीजी ने अपनी कुशलता केंद्रित शिक्षा प्रणाली जिसे उन्होंने 'नई तालीम' का नाम दिया है, के केंद्र में इन्हीं तीन मूल तत्वों को रखा है। उनके अनुसार, कार्य-कुशलता केंद्रित शिक्षा प्रणाली बच्चों को अपने शरीर, मन तथा आत्मा को नियंत्रित करने एवं एकीकृत करने में सहायता प्रदान करती है, परंतु दुर्भाग्यवश वर्तमान शिक्षा प्रणाली किताब-केंद्रित है न कि अनुभव-केंद्रित। अतः वर्तमान में प्रचलित शिक्षा प्रणाली तथा मानव के अंदर बढ़ रही असुरक्षा एवं असंतोष की भावना के परिप्रेक्ष्य में गांधीजी के द्वारा बताई गई 'नई तालीम' अत्यंत सार्थक है। इसकी सार्थकता इस बात से स्पष्ट है कि इसमें शिक्षा तथा कार्य को, शिक्षक तथा विद्यार्थी को एवं सिखाने तथा आचरण करने को अलग-अलग न मानते हुए एक ही माना गया है।

© NCERT not to be republished

शिक्षा के इस समग्रग्राही स्वरूप को श्री अरविंद की परम शिष्या श्रीमाता के द्वारा भी स्वीकार किया गया है। एक सार्थक जीवन जीने के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु उन्होंने व्यक्ति द्वारा किसी भी कार्य को संपूर्णता अथवा निर्दोषता में करने की सलाह दी है। इसके लिए आगे उन्होंने यह आवश्यक बताया है कि व्यक्ति अपने आप के प्रति एवं अपने विभिन्न अंगों के द्वारा पूरे किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के प्रति पूर्णतः सजग एवं जागरूक रहे (श्री अरविंद आश्रम, 1978, पृष्ठ 3)। उनके अनुसार, इस सजगता एवं जागरूकता की प्राप्ति तभी संभव है जब उसने जो शिक्षा ग्रहण की है उसमें पाँच आयामों का समावेश हो— शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, धार्मिक एवं प्राणिक (श्री अरविंद आश्रम, 1978, पृष्ठ 9)। इस तरह की जीवनदायिनी तथा संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था ही वास्तव में मनुष्य के अंदर ऐसे सद्गुणों को विकसित कर सकती है जिसमें वह सहानुभूति, आंतरिक संतोष एवं सभी से प्रेम कर सके। ऐसी शिक्षा प्रणाली ही वास्तविकता में मनुष्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकती है। यह परिवर्तन जो कि मनुष्य से शुरू होगा, अंततः समाज को एक सकारात्मक तरीके से निश्चित ही प्रभावित करेगा।

भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा

शिक्षा के एकात्मक स्वरूप में अध्यापन का कार्य सिर्फ़ एक व्यवसाय मात्र न होकर एक ईश्वरीय आह्वान का रूप ले लेता है, जिसमें शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। शिक्षक अपने अध्ययन-अध्यापन के कार्य को सिर्फ़ एक यांत्रिक तरीके से न लेकर उसे अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने का माध्यम बना लेता है। शिक्षा के इस दृष्टिकोण को भारत में प्राचीन काल से ही अपनाया गया है तथा एक गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से शिक्षा प्रणाली में ऊपर वर्णित मूल्यों को समावेशित किया गया है। चाहे गांधी हों या टैगोर या फिर श्री अरविंद, लगभग प्रत्येक भारतीय चिंतक ने शिक्षा प्रणाली से जुड़े इन मूल्यों को अपनाया है।

'गुरु' संस्कृत से निकला एक ऐसा भारतीय शब्द है जिसका अंग्रेज़ी सामानार्थी शब्द कोई नहीं है। यद्यपि लोग इसे 'टीचर' (Teacher) के तौर पर अंग्रेज़ी में सामान्यतः अनुवाद करते हैं, परंतु गुरु अपने अर्थ में एक 'टीचर' की तुलना में बहुत अधिक बड़ी भूमिका निभाने वाला तथा उत्तरदायित्व पूरा करने वाला व्यक्ति होता है। पारंपरिक तौर से गुरु एक शिक्षक (टीचर) के अतिरिक्त एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक, एक अभिभावक माना जाता है। गुरु एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके ज्ञान की सीमा अपने शिष्य के लिए सिर्फ़ बौद्धिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि अनुभवात्मक स्तर पर भी वह अपने ज्ञान को अपने शिष्यों को प्रदान करता है। गुरु ही वह व्यक्ति होता है जो अपने शिष्यों के समक्ष जीवन के अर्थ को स्पष्ट करता है, उन्हें जीवन जीने का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। गुरु की भूमिका का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह होता है कि वह धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का सबसे पुराना एवं विश्वसनीय स्रोत माना जाता है (मेलको, 1982, पृष्ठ 33)। भारतीय गुरु परंपरा की एक और विशेषता यह है कि यहाँ गुरु एक ऐसा तानाशाह नहीं होता जो अपने शिष्य को ज़बरदस्ती शिक्षा प्रदान करता है। भारत में गुरु वस्तुतः विद्यार्थी की जानने की ललक को

© NCERT not to be republished

बढ़ाने वाला तथा उसे गूढ़ प्रश्नों को हल करने में एक सहायता प्रदान करने वाला, ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करने वाला होता है। भारत में गुरु-शिष्य संबंध सम्मान, आदर तथा आध्यात्मिक परस्परता पर आधारित होता है। गुरु से अपेक्षा की जाती है कि वह शिष्य को आध्यात्मिक ज्ञान के रास्ते पर ले जाए तथा शिष्य को उसके बदले में आदर और सम्मान देना होता है।

श्री अरविंद ने भारतीय शिक्षा प्रणाली पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कुछ सिद्धांतों का उल्लेख किया था। इनमें से पहला सिद्धांत यह था कि 'कुछ भी पढ़ाया नहीं जा सकता' (श्री अरविंद आश्रम, 1956, पृष्ठ 20)। इस सिद्धांत के आधार पर एक शिक्षक के संदर्भ में जिन विचारों का निर्माण उन्होंने किया था, वह बहुत कुछ गुरु की अवधारणा को ही फलीभूत करता है। उन्होंने लिखा है कि शिक्षक कोई निर्देश देने वाला या कार्य कराने वाला नहीं होता है, बल्कि वह एक सहायक एवं मार्गदर्शक होता है। उसका काम सलाह देना होता है न कि अपनी बातों को विद्यार्थी के ऊपर ज़बरदस्ती लादना। वह एक विद्यार्थी के मन को प्रशिक्षित करने वाला नहीं होता है, बल्कि उसका काम तो उसके मन को प्रकाशित करना तथा उस प्रकाश की ओर अग्रसर होने के लिए उसे उत्साहित करना मात्र होता है। शिक्षक विद्यार्थी में ज्ञान को आरोपित नहीं करता, बल्कि उसे ज्ञान का मार्ग दिखाता है। ज्ञान तो विद्यार्थी को स्वयं अपनी मेहनत से प्राप्त करना होता है। इसी प्रकार टैगोर ने भी इस बात को स्पष्ट किया है कि एक शिक्षक जब गुरु का स्वरूप धारण करता है तो वह वस्तुतः अपने व्यक्तित्व को इतना प्रकाशमान कर लेता है कि अन्य उससे ऊर्जा ग्रहण करने लग जाते हैं, परंतु वर्तमान समय में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या ऐसा शिक्षक जो गुरु बनने की क्षमता रखता हो, विज्ञापन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है? कृष्णा (2016) ने टैगोर को उद्धृत करते हुए गुरु की परंपरा एवं विशेषताओं को और भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार गुरु वह है जो अपने प्रकाशमान व्यक्तित्व से अपने विद्यार्थियों के जीवन को प्रकाशित करता है एवं अपने स्नेह से विद्यार्थियों को आनंद प्रदान करता है। गुरु वह होता है जो अपने विद्यार्थियों को वह शिक्षा प्रदान करता है जो अमूल्य है। वह शिक्षा वस्तुतः एक ऐसा मूल्य अथवा भावना होती है जिसे धारण करने के लिए विद्यार्थियों को लगन एवं अपने गुरु का आशीष प्राप्त करना होता है (टैगोर, कृष्णा से उद्धृत, 2016, पृष्ठ 42)। जब शिक्षा प्रणाली में 'गुरु' से संबंधित इन विचारों को शामिल करेंगे तो वह एक पूर्णरूपेण अलग अर्थ धारण कर लेगी, जिसमें शिक्षा एक साधन का रूप ले लेगी जो कि सत्य के दर्शन की लालसा पर केंद्रित होगी।

खंड तीन— बदलाव की प्रत्याशा— आदर्शवाद एवं यथार्थवाद की खत्म न होने वाली बहस

ऊपर खंड एक में हमने भारतीय शिक्षा प्रणाली के समक्ष मौजूद चुनौतियों, उसके अनुपयुक्त विचारधारात्मक आधारों तथा उसमें बदलाव की आवश्यकता के विषय में बात की है। खंड दो में मौजूदा चुनौतियों एवं परिवर्तन की आवश्यकता के संदर्भ में एकीकृत शिक्षा दर्शन को एक संभावना के तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आगे बढ़ने से पहले

© NCERT not to be republished

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यदि ऊपर कही गई बातों से ऐसा लगता हो कि हमारा मत प्राचीन शिक्षा परंपरा या धर्म/पंथ केंद्रित व्यवस्था को उसके उसी रूप में पुनर्स्थापित करना है तो यह गलत है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में अनेक मुक्तिदायी विशेषताओं के होते हुए भी उनमें कुछ महत्वपूर्ण खामियाँ हैं। सर्वप्रथम तो प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली अभिजनवादी अथवा सभ्रांतवादी थी जिसमें सामान्यतः समाज के सिर्फ़ ऊपर के तबकों को ही शिक्षा ग्रहण करने की इजाज़त थी। इसी प्रकार नारीवादी दृष्टिकोण से यदि देखें तो शिक्षा प्रणाली में महिलाओं की स्थिति भी दोयम दर्जे की ही थी तथा शिक्षा ग्रहण करने में उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता था। तथापि परंपरागत भारतीय शिक्षा प्रणाली की कुछ खामियाँ थीं, लेकिन उसके बावजूद पूरी भारतीय ज्ञान परंपरा को इन खामियों के कारण नकारा नहीं जा सकता है। खंड दो में भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता के विषय में पहले ही बताया जा चुका है। जब समाज में परिवर्तन का कोलाहल होता है, तब नवसृजित समाज को स्वरूप प्रदान करने हेतु उसकी परंपराओं में जाना आवश्यक होता है, लेकिन सवाल यह है कि वे कौन-सी बातें हैं जो हमें एकात्म मनाववाद में निहित उद्धार विषयक संभावनाओं को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में लागू करने से रोकती हैं?

सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि एकीकृत शिक्षा दर्शन को कार्यान्वित करने के विषय में जो आपत्तियाँ उठाई गई हैं, वे मुख्यतः दो प्रकार की हैं। आपत्तियों का पहला वर्ग प्रत्यक्षवाद से प्रेरणा ग्रहण करते हुए यह तर्क प्रस्तुत करता है कि आधुनिक सोच एवं भावुकताओं के प्रकाश में एकीकृत शिक्षा दर्शन को अपनाना ठीक नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, आज की बाज़ार आधारित पूंजीवादी संस्कृति में सभी को लाभ कमाने एवं व्यवस्था में बने रहने के लिए इस व्यवस्था के नियमों को सीखना एवं अपनाना होता है और अगर हम एकीकृत शिक्षा दर्शन से प्रेरित होकर मूल्य एवं नैतिकता आदि को आधुनिक शिक्षा में प्रश्रय प्रदान करेंगे तो वह आगे चलकर भारत की पूंजीवाद की दिशा में हो रही प्रगति को बाधित करेगी।

वस्तुतः पूंजीवादी समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु शिक्षा की एक उपयोगितावादी एवं यांत्रिक धारणा को विकसित किया गया है। तत्पश्चात् 'मेरिट' का एक आवरण चढ़ाकर उसे न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा, उपाधि तथा नौकरी प्राप्त करने का एक ज़रिया मात्र रह गई है तथा शिक्षा के क्षेत्र में सफलता का मापदंड लोगों को मिलने वाली मासिक वेतन की राशि बन गई। जैसा कि पार्सेंस (1968) ने कहा है कि आधुनिक शिक्षा एक व्यक्ति को एक बड़े सामाजिक व्यवस्था का अंग मात्र बनाने के लिए तैयार करती है। यह व्यक्ति के अंदर एक ऐसी मानसिकता को बढ़ाती है जो उसे व्यवस्था के अंदर प्रभावात्मक भूमिका अदा करने के लिए प्रेरित करती है। हालाँकि, शिक्षा के यांत्रिक एवं उपयोगितावादी पक्ष को पूर्णतः खारिज करना आज के समय में उचित नहीं होगा, परंतु शिक्षा को सिर्फ़ और सिर्फ़ इसी संदर्भ में देखना उसकी संपूर्णता को नकारने जैसा होगा। यथार्थवादियों का यह मानना है कि आज के समय

© NCERT not to be republished

में वैकल्पिक अथवा एकात्मक शिक्षा की बात करना नुकसान को आमंत्रित करने जैसा है, क्योंकि आज के समय में दर्शन की नहीं दक्षता की आवश्यकता अधिक है, परंतु गहन विश्लेषण के उपरांत हम यह कह सकते हैं कि यह अल्पकालिक नुकसान वास्तव में एक दीर्घकालीन लाभ की शुरुआत होगी। एक एकात्मक एवं समावेशी शिक्षा प्रणाली हमें हमारे अपनों से, हमारे आस-पास से जोड़ेगी, हमें संतुष्टि प्रदान करेगी तथा हमारे जीवन को सार्थक बनाएगी।

आपत्तियों का दूसरा वर्ग ऐसे विद्वानों एवं नीति-निर्माताओं का है जो सैद्धांतिक तौर पर तो इस बात से सहमत हैं कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु एकीकृत शिक्षा दर्शन ही एक उपाय है, परंतु उनके अनुसार वर्तमान समय में एकीकृत शिक्षा दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली की शुरुआत करना संभव नहीं है। एकीकृत शिक्षा दर्शन किसी वैकल्पिक शिक्षा लागू करने वाले विद्यालय में तो अपनाया जा सकता है, परंतु एक विशाल शिक्षा व्यवस्था में इसे लागू करने की चुनौतियों से निपटने के लिए पर्याप्त संसाधन अभी उपलब्ध नहीं हैं। इनके अनुसार शिक्षा की प्रकृति में बदलाव से ज़्यादा ज़रूरी अभी उसके प्रसार को बढ़ाना है। एकीकृत शिक्षा दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली लागू करने से पहले हमें सुदूर क्षेत्रों में इसके प्रसार तथा बीच में ही शिक्षा छोड़ देने की प्रवृत्ति को रोकने की आवश्यकता अधिक है, परंतु इस वर्ग की जो भी आपत्तियाँ हैं वह वस्तुतः निराधार हैं। सर्वप्रथम तो यह मानना कि किसी सार्थक विचार को अपनाने एवं लागू करने में अत्यधिक संसाधनों की आवश्यकता है, वस्तुतः गलत है। संसाधनों से अत्यधिक जिस बात की आवश्यकता है— वह है इच्छाशक्ति। उनकी दूसरी भ्रांति यह है कि गरीब लोग शिक्षा के क्षेत्र में सांस्कृतिक संवेदना नहीं रखते हैं। कला, साहित्य, संगीत एवं शिक्षा केवल एक खास वर्ग के लोगों को ही अपनी ओर आकर्षित करती है। वस्तुतः इस प्रकार के तर्क हमें विरोधपूर्ण स्थिति की ओर ले जाते हैं, जहाँ एक तरफ़ यह माना जाता है कि गरीब इसलिए गरीब हैं, क्योंकि वह शिक्षा ग्रहण नहीं करता और दूसरी तरफ़ यह तर्क दिया जाता है कि एक गरीब के शिक्षा ग्रहण करने के प्रति उदासीन रहने का कारण गरीबी है *(द न्यू लीम, 2016)*। आज हमें खुद से यह सवाल पूछना होगा कि क्या एकीकृत शिक्षा अत्यधिक संसाधन माँगती है अथवा समर्पित विद्यार्थी एवं शिक्षक, जो समाज एवं राष्ट्र को एक नई दिशा दिखाने के लिए उत्सुक हों।

निष्कर्ष

इतिहास ने हमेशा मनुष्य को विकल्प प्रदान किया है। एक तरफ़ हम समाज में प्रचलित मुख्य विचारों एवं परंपराओं को बिना कोई सवाल पूछे अपना सकते हैं तथा स्वयं को उन विचारों के अनुरूप ढालने का प्रयास कर सकते हैं तो दूसरी तरफ़ हम एक ऐसे विकल्प को भी चुन सकते हैं जो कि कष्टदायी तो है, पर समाज में प्रचलित परंपराओं को चुनौती देकर उसे परिवर्तन एवं विकास की ओर अग्रसर करता है। शिक्षा के क्षेत्र में एकीकृत शिक्षा दर्शन को अपनाना एक साहसी एवं अर्थपूर्ण विकल्प का चयन करने जैसा होगा। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम शिक्षा के क्षेत्र में भूल चुके उन आदर्शों को पुनः

© NCERT not to be republished

स्थापित करें जो वस्तुतः हमारे अपने ही हैं। वस्तुतः हमारी संस्कृति एवं विरासत में जो 'सात्विक' है, उसे प्राप्त करने के लिए हमें एकीकृत शिक्षा दर्शन को अपनाना होगा। एक ऐसी एकात्म एवं संपूर्ण शिक्षा, जहाँ मनसा, वाचा एवं कर्मणा का संयोग हो, वही हमें स्वधर्म के विषय में जागरूकता प्रदान कर पाएगी। जब हमारी शिक्षा प्रणाली हमारे अपने समाज एवं उसकी परंपराओं पर आधारित होगी तभी हम एक ज्ञान आधारित संस्कृति का निर्माण कर पाएँगे तथा मानव जाति के विकास में योगदान कर पाएँगे।

संदर्भ

आचार्य, पोरोमेश. 1997. एजुकेशनल आइडियाज़ ऑफ़ टैगोर एंड गांधी— ए कम्पेरेटिव स्टडी. *इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. वॉल्यूम (12). पृष्ठ 601–605. महाराष्ट्र.

उपाध्याय, दीनदयाल. 1968 (1992). *इंटीग्रल ह्यूमैनिज़्म*. जाग्रति प्रकाशन, नोएडा.

कृष्णा, आर. एस. 2016. धर्मा ट्रांसेंडेन्स एंड पेडागॉजिक चैलेंजिस. *द न्यू लीम*. 2(13). पृष्ठ 38–42. दिल्ली.

गांधी, एम. के. 1953. *टुवार्ड्स न्यू एजुकेशन*. नवजीवन पब्लिशिंग, अहमदाबाद.

चावला, रितिका. 2016. इन्वोकिंग द गांधियन मॉडल ऑफ़ एजुकेशन. *द न्यू लीम*. 2(10). पृष्ठ 5–8. दिल्ली.

पाउलो फ्रेरे. 1972. *पेडागॉजी ऑफ़ द ऑपरेशन*. पेंग्विन, लंदन.

नेहरू, जवाहरलाल. 1984. *ऐन ऑटोबायोग्राफ़ी*. पृष्ठ 510. जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल फ़ंड, नयी दिल्ली.

मेलको, जोएल. डी. 1982. द गुरु इन हिंदू ट्रेडीशन. *न्यूमैन*. 29(1). पृष्ठ 33–6. 13 जनवरी, 2014 को http://www.jstor.org/stable/3269931 से लिया गया है.

मुखर्जी, राधा और कुमुद. 1969. *एनशियंट इंडियन ट्रेडीशन (ब्रह्मनिकल एंड बुद्धिस्ट)*. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

श्री अरविंद आश्रम. 1956. *श्री अरविंद एंड मदर ऑन एजुकेशन*. श्री अरविंद आश्रम, पुद्दुचेरी.

———. 1978. द मदर ऑन एजुकेशन. द *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ द मदर*. खंड (12). श्री अरविंद आश्रम, पुद्दुचेरी.

सुंदरम, वी. 2005. हिंदू रिवाइवलिज़्म एंड दीनदयाल उपाध्याय. *न्यूज़ टुडे*. 2 अगस्त, 2016 को http://deendayalupadhyay.org/hl ndu.html से लिया गया है.

© NCERT not to be republished